वनवासियों द्वारा भरतजी की मंडली का सत्कार, कैकेयी का पश्चाताप

चौपाई :

*** कोल किरात भिल्ल बनबासी। मधु सुचि सुंदर स्वादु सुधा सी॥ भरि भरि परन पुटीं रचि रूरी। कंद मूल फल अंकुर जूरी॥1॥

भावार्थ:

कोल, किरात और भील आदि वन के रहने वाले लोग पवित्र, सुंदर एवं अमृत के समान स्वादिष्ट मधु (शहद) को सुंदर दोने बनाकर और उनमें भर-भरकर तथा कंद, मूल, फल और अंकुर आदि की जूड़ियों (अँटियों) को॥1॥

*** सबहि देहिं करि बिनय प्रनामा। कहि कहि स्वाद भेद गुन नामा॥ देहिं लोग बहु मोल न लेहीं। फेरत राम दोहाई देहीं॥2॥

भावार्थ:

सबको विनय और प्रणाम करके उन चीजों के अलग-अलग स्वाद, भेद (प्रकार), गुण और नाम बता-बताकर देते हैं। लोग उनका बहुत दाम देते हैं, पर वे नहीं लेते और लौटा देने में श्री रामजी की दुहाई देते हैं॥2॥

*** कहहिं सनेह मगन मृदु बानी। मानत साधु पेम पहिचानी॥ तुम्ह सुकृती हम नीच निषादा। पावा दरसनु राम प्रसादा॥3॥

भावार्थ:

प्रेम में मग्न हुए वे कोमल वाणी से कहते हैं कि साधु लोग प्रेम को पहचानकर उसकासम्मान करते हैं (अर्थात आप साधु हैं, आप हमारे प्रेम को देखिए, दाम देकर या वस्तुएँ लौटाकर हमारे प्रेम का तिरस्कार न कीजिए)। आप तो पुण्यात्मा हैं, हम नीच निषाद हैं। श्री रामजी की कृपा से ही हमने आप लोगों के दर्शन पाए हैं॥3॥

*** हमहि अगम अति दरसु तुम्हारा। जस मरु धरनि देवधुनि धारा॥ राम कृपाल निषाद नेवाजा। परिजन प्रजउ चहिअ जस राजा॥4॥

भावार्थ:

हम लोगों को आपके दर्शन बड़े ही दुर्लभ हैं, जैसे मरुभूमि के लिए गंगाजी की धारा दुर्लभ है! (देखिए) कृपालु श्री रामचन्द्रजी ने निषाद पर कैसी कृपा कीहै। जैसे राजा हैं वैसा ही उनके परिवार और प्रजा को भी होना चाहिए॥4॥

दोहा :

*** यह जियँ जानि सँकोचु तजि करिअ छोहु लखि नेहु। हमहि कृतारथ करनलगि फल तृन

अंकुर लेहु ॥250॥

भावार्थ:

हृदय में ऐसा जानकर संकोच छोड़कर और हमारा प्रेम देखकर कृपा कीजिए और हमको कृतार्थ करने के लिए ही फल, तृण और अंकुर लीजिए॥250॥

चौपाई :

*** तुम्ह प्रिय पाहुने बन पगु धारे। सेवा जोगु न भाग हमारे॥ देब काह हम्तुम्हहि गोसाँई। ईंधनु पात किरात मिताई॥1॥

भावार्थ:

आप प्रिय पाहुने वन में पधारे हैं। आपकी सेवा करने के योग्य हमारे भाग्य नहीं हैं। हे स्वामी! हम आपको क्या देंगे? भीलों की मित्रता तो बस, ईंधन (लकड़ी) और पत्तों ही तक है॥1॥

*** यह हमारि अति बड़ि सेवकाई। लेहिं न बासन बसन चोराई॥ हम जड़ जीव जीव गन घाती। कुटिल कुचाली कुमति कुजाती॥2॥

भावार्थ:

हमारी तो यही बड़ी भारी सेवा है कि हम आपके कपड़े और बर्तन नहीं चुरा लेते। हम लोग जड़ जीव हैं, जीवों की हिंसा करने वाले हैं, कुटिल, कुचाली, कुबुद्धि और कुजाति हैं॥2॥

*** पाप करत निसि बासर जाहीं। नहिं पट कटि नहिं पेट अघाहीं॥ सपनेहुँ धरमबुद्धि कस काऊ। यह रघुनंदन दरस प्रभाऊ॥3॥

भावार्थ:

हमारे दिन-रात पाप करते ही बीतते हैं। तो भी न तो हमारी कमर में कपड़ा है और न पेट ही भरते हैं। हममें स्वप्न में भी कभी धर्मबुद्धि कैसी? यह सब तो श्री रघुनाथजी के दर्शन का प्रभाव है॥3॥

*** जब तें प्रभु पद पदुम निहारे। मिटे दुसह दुख दोष हमारे॥ बचन सुनत पुरजन अनुरागे। तिन्ह के भाग सराहन लागे॥4॥

भावार्थ:

जब से प्रभु के चरण कमल देखे, तब से हमारे दुःसह दुःख और दोष मिट गए। वनवासियों के वचन सुनकर अयोध्या के लोग प्रेम में भर गए और उनके भाग्य की सराहना करने लगे॥4॥

छन्द :

*** लागे सराहन भाग सब अनुराग बचन सुनावहीं बोलनि मिलनि सिय राम चरन सनेहु लखि सुखु पावहीं॥ नर नारि निदरहिं नेहु निज सुनि कोल भिल्लनि की गिरा। तुलसीकृपा रघुबंसमनि की लोह लै लौका तिरा॥

भावार्थ:

सब उनके भाग्य की सराहना करने लगे और प्रेम के वचन सुनाने लगे। उन लोगों के बोलने और

मिलने का ढंग तथा श्री सीता-रामजी के चरणों में उनका प्रेम देखकर सब सुख पा रहे हैं। उन कोल-भीलों की वाणी सुनकर सभी नर-नारी अपने प्रेम का निरादर करते हैं (उसे धिक्कार देते हैं)। तुलसीदासजी कहते हैं कि यह रघुवंशमणि श्रीरामचन्द्रजी की कृपा है कि लोहा नौका को अपने ऊपर लेकर तैर गया॥

सोरठा :

*** बिहरहिं बन चहु ओर प्रतिदिन प्रमुदित लोग सब। जल ज्यों दादुर मोर भए पीन पावस प्रथम॥251॥

भावार्थ:

सब लोग दिनोंदिन परम आनंदित होते हुए वन में चारों ओर विचरते हैं। जैसे पहली वर्षा के जल से मेंढक और मोर मोटे हो जाते हैं (प्रसन्न होकर नाचते-कूदते हैं)॥251॥

चौपाई :

*** पुर जन नारि मगन अति प्रीती। बासर जाहिं पलक सम बीती॥ सीय सासु प्रति बेष बनाई। सादर करइ सरिस सेवकाई॥1॥

भावार्थ:

अयोध्यापुरी के पुरुष और स्त्री सभी प्रेममें अत्यन्त मग्न हो रहे हैं। उनके दिन पल के समान बीत जाते हैं। जितनी सासुएँ थीं, उतने ही वेष (रूप) बनाकर सीताजी सब सासुओं की आदरपूर्वक एक सी सेवा करती हैं॥1॥

*** लखा न मरमु राम बिनु काहूँ। माया सब सिय माया माहूँ॥ सीयँ सासु सेवा बस कीन्हीं। तिन्ह लहि सुख सिख आसिष दीन्हीं॥2॥

भावार्थ:

श्री रामचन्द्रजी के सिवा इस भेद को और किसी ने नहीं जाना। सब मायाएँ (पराशक्ति महामाया) श्री सीताजी की माया में ही हैं। सीताजी ने सासुओं को सेवा से वशमें कर लिया। उन्होंने सुख पाकर सीख और आशीर्वाद दिए॥2॥

*** लखि सिय सहित सरल दोउ भाई। कुटिल रानि पछितानि अघाई॥ अवनि जमहि जाचति कैकेई। महि न बीचु बिधि मीचु न देई॥3॥

भावार्थ:

सीताजी समेत दोनों भाइयों (श्री राम-लक्ष्मण) को सरल स्वभाव देखकर कुटिल रानी कैकेयी भरपेट पछताई। वह पृथ्वी तथा यमराज से याचना करती है, किन्तु धरती बीच (फटकर समा जाने के लिए रास्ता) नहीं देती और विधाता मौत नहीं देता॥3॥

*** लोकहुँ बेद बिदित कबि कहहीं। राम बिमुख थलु नरक न लहहीं॥ यहु संसउ सब के मन माहीं। राम गवनु बिधि अवध कि नाहीं॥4॥

भावार्थ:

लोक और वेद में प्रसिद्ध है और कवि (ज्ञानी) भी कहते हैं कि जो श्री रामजी से विमुख हैं, उन्हें नरक में भी ठौर नहीं मिलती। सबके मन में यह संदेह हो रहा था कि हे विधाता! श्री रामचन्द्रजी का अयोध्या जाना होगा या नहीं॥4॥

दोहा :

*** निसि न नीद नहिं भूख दिन भरतु बिकल सुचि सोच। नीच कीच बिच मगन जस मीनहि सलिल सँकोच॥252॥

भावार्थ:

भरतजी को न तो रात को नींद आती है, न दिन में भूख ही लगती है। वे पवित्र सोच में ऐसे विकल हैं, जैसे नीचे (तल) के कीचड़ में डूबी हुई मछली को जल की कमी सेव्याकुलता होती है॥252॥

चौपाई :

*** कीन्हि मातु मिस काल कुचाली। ईति भीति जस पाकत साली॥ केहि बिधि होइ राम अभिषेकू। मोहि अवकलत उपाउ न एकू॥1॥

भावार्थ:

(भरतजी सोचते हैं कि) माता के मिस से काल ने कुचाल की है। जैसे धान के पकते समय ईति का भय आ उपस्थित हो। अब श्री रामचन्द्रजी का राज्याभिषेक किस प्रकार हो, मुझे तो एक भी उपाय नहीं सूझ पड़ता॥1॥

*** अवसि फिरहिं गुर आयसु मानी। मुनि पुनि कहब राम रुचि जानी॥ मातु कहेहुँ बहुरहिं रघुराऊ। राम जननि हठ करबि कि काऊ॥2॥

भावार्थ:

गुरुजी की आज्ञा मानकर तो श्री रामजी अवश्य ही अयोध्या को लौट चलेंगे, परन्तु मुनि वशिष्ठजी तो श्री रामचन्द्रजी की रुचि जानकर ही कुछ कहेंगे। (अर्थात वे श्री रामजी की रुचि देखे बिना जाने को नहीं कहेंगे)। माता कौसल्याजी के कहने से भी श्री रघुनाथजी लौट सकते हैं, पर भला, श्री रामजी को जन्म देने वाली माता क्या कभी हठ करेगी?॥2॥

*** मोहि अनुचर कर केतिक बाता। तेहि महँ कुसमउ बाम बिधाता॥ जौं हठ करउँ त निपट कुकरमू। हरगिरि तें गुरु सेवक धरमू॥3॥

भावार्थ:

मुझ सेवक की तो बात ही कितनी है? उसमें भी समय खराब है (मेरे दिन अच्छे नहीं हैं) और विधाता प्रतिकूल है। यदि मैं हठ करता हूँ तो यह घोर कुकर्म (अधर्म) होगा, क्योंकि सेवक का धर्म शिवजी के पर्वत कैलास से भी भारी (निबाहने में कठिन) है॥3॥

*** एकउ जुगुति न मन ठहरानी। सोचत भरतहि रैनि बिहानी॥ प्रात नहाइ प्रभुहि सिर नाई। बैठत पठए रिषयँ बोलाई॥4॥

भावार्थ:

एक भी युक्ति भरतजी के मन में न ठहरी। सोचते ही सोचते रात बीत गई। भरतजी प्रातःकाल स्नान करके और प्रभु श्री रामचन्द्रजी को सिर नवाकर बैठे ही थे कि ऋषि वशिष्ठजी ने उनको बुलवा भेजा॥4॥ श्री वशिष्ठजी का भाषण

दोहा :

*** गुर पद कमल प्रनामु करि बैठे आयसु पाइ। बिप्र महाजन सचिव सब जुरे सभासद आइ॥253॥

भावार्थ:

भरतजी गुरु के चरणकमलों में प्रणाम करके आज्ञा पाकर बैठ गए। उसी समय ब्राह्मण, महाजन, मंत्री आदि सभी सभासद आकर जुट गए॥253॥

चौपाई :

*** बोले मुनिबरु समय समाना। सुनहु सभासद भरत सुजाना॥ धरम धुरीन भानुकुल भानू। राजा रामु स्वबस भगवानू॥1॥

भावार्थ:

श्रेष्ठ मुनि वशिष्ठजी समयोचित वचन बोले- हे सभासदों! हे सुजान भरत! सुनो। सूर्यकुल के सूर्य महाराज श्री रामचन्द्र धर्मधुरंधर और स्वतंत्र भगवान हैं॥1॥

*** सत्यसंध पालक श्रुति सेतू। राम जनमु जग मंगल हेतु॥ गुर पितु मातु बचन अनुसारी। खल दलु दलन देव हितकारी॥2॥

भावार्थ:

वे सत्य प्रतिज्ञ हैं और वेद की मर्यादा के रक्षक हैं। श्री रामजी का अवतार ही जगत के कल्याण के लिए हुआ है। वे गुरु पिता और माता के वचनों के अनुसार चलने वाले हैं। दुष्टों के दल का नाश करने वाले और देवताओं के हितकारी हैं॥2॥

*** नीति प्रीति परमारथ स्वारथु। कोउ न राम सम जान जथारथु॥ बिधि हरि हरु ससि रबि दिसिपाला। माया जीव करम कुलि काला॥3॥

भावार्थ:

नीति, प्रेम, परमार्थ और स्वार्थ को श्री रामजी के समान यथार्थ (तत्त्व से) कोई नहीं जानता। ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, चन्द्र, सूर्य, दिक्पाल, माया, जीव, सभी कर्म और काल,॥3॥

*** अहिप महिप जहँ लगि प्रभुताई। जोग सिद्धि निगमागम गाई॥ करि बिचार जियँ देखहु नीकें। राम रजाइ सीस सबही कें॥4॥

भावार्थ:

शेषजी और (पृथ्वी एवं पाताल के अन्यान्य) राजा आदि जहाँ तक प्रभुता है और योग की सिद्धियाँ, जो वेद और शास्त्रों में गाई गई हैं, हृदय में अच्छी तरह विचार कर देखो, (तो यह स्पष्ट दिखाई

देगा कि) श्री रामजी की आज्ञा इन सभी के सिर पर है (अर्थात श्री रामजी ही सबके एक मात्र महान महेश्वर हैं)॥4॥

दोहा :

*** राखें राम रजाइ रुख हम सब कर हित होइ। समुझि सयाने करहु अब सब मिलि संमत सोइ॥254॥

भावार्थ:

अतएव श्री रामजी की आज्ञा और रुख रखने में ही हम सबका हित होगा। (इस तत्त्व और रहस्य को समझकर) अब तुम सयाने लोग जो सबको सम्मत हो, वही मिलकर करो॥254॥

चौपाई :

*** सब कहुँ सुखद राम अभिषेकू। मंगल मोद मूल मग एकू॥ केहि बिधि अवध चलहिं रघुराऊ। कहहु समुझि सोइ करिअ उपाऊ॥1॥

भावार्थ:

श्री रामजी का राज्याभिषेक सबके लिए सुखदायक है। मंगल और आनंद का मूल यही एक मार्ग है। (अब) श्री रघुनाथजी अयोध्या किस प्रकार चलें? विचारकर कहो, वही उपाय किया जाए॥1॥

*** सब सादर सुनि मुनिबर बानी। नय परमारथ स्वारथ सानी॥ उतरु न आव लोग भए भोरे। तब सिरु नाइ भरत कर जोरे॥2॥

भावार्थ:

मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठजी की नीति, परमार्थ और स्वार्थ (लौकिक हित) में सनी हुई वाणी सबने आदरपूर्वक सुनी। पर किसी को कोई उत्तर नहीं आता, सब लोग भोले (विचार शक्ति से रहित) हो गए। तब भरत ने सिर नवाकर हाथ जोड़े॥2॥

*** भानुबंस भए भूप घनेरे। अधिक एक तें एक बड़ेरे॥ जनम हेतु सब कहँ कितु माता। करम सुभासुभ देइ बिधाता॥3॥

भावार्थ:

(और कहा-) सूर्यवंश में एक से एक अधिक बड़े बहुत से राजा हो गए हैं। सभी केजन्म के कारण पिता-माता होते हैं और शुभ-अशुभ कर्मों को (कर्मों का फल) विधाता देते हैं॥3॥

*** दलि दुख सजइ सकल कल्याना। अस असीस राउरि जगु जाना॥ सो गोसाइँ बिधि गति जेहिं छेंकी। सकइ को टारि टेक जो टेकी॥4॥

भावार्थ:

आपकी आशीष ही एक ऐसी है, जो दुःखों का दमन करके, समस्त कल्याणों को सज देती है, यह जगत जानता है। हे स्वामी! आप ही हैं, जिन्होंने विधाता की गति (विधान) को भी रोक दिया। आपने जो टेक टेक दी (जो निश्चय कर दिया) उसे कौन टाल सकता है?॥4॥

*** बूझिअ मोहि उपाउ अब सो सब मोर अभागु। सुनि सनेहमय बचनगुर उर उमगा

अनुरागु॥255॥

भावार्थ:

अब आप मुझसे उपाय पूछते हैं, यह सब मेरा अभाग्य है। भरतजी के प्रेममय वचनों को सुनकर गुरुजी के हृदय में प्रेम उमड़ आया॥255॥

चौपाई :

*** तात बात फुरि राम कृपाहीं। राम बिमुख सिधि सपनेहुँ नाहीं॥ सकुचउँ तात कहत एक बाता। अरध तजहिं बुध सरबस जाता॥1।

भावार्थ:

(वे बोले-) हे तात! बात सत्य है, पर है रामजी की कृपा से ही। राम विमुख को तो स्वप्न में भी सिद्धि नहीं मिलती। हे तात! मैं एक बात कहने में सकुचाता हूँ। बुद्धिमान लोग सर्वस्व जाता देखकर (आधे की रक्षा के लिए) आधा छोड़ दिया करते हैं॥1॥

*** तुम्ह कानन गवनहु दोउ भाई। फेरिअहिं लखन सीय रघुराई॥ सुनि सुबचन हरषे दोउ भ्राता। भे प्रमोद परिपूरन गाता॥2॥

भावार्थ:

अतः तुम दोनों भाई (भरत-शत्रुघ्न) वन को जाओ और लक्ष्मण, सीता और श्री रामचन्द्र को लौटा दिया जाए। ये सुंदर वचन सुनकर दोनों भाई हर्षित हो गए। उनके सारे अंग परमानंद से परिपूर्ण हो गए॥2॥

*** मन प्रसन्न तन तेजु बिराजा। जनु जिय राउ रामु भए राजा॥ बहुत लाभ लोगन्ह लघु हानी। सम दुख सुख सब रोवहिं रानी॥3॥

भावार्थ:

उनके मन प्रसन्न हो गए। शरीर में तेज सुशोभित हो गया। मानो राजा दशरथजी उठे हों और श्री रामचन्द्रजी राजा हो गए हों! अन्य लोगों को तो इसमें लाभ अधिक और हानि कम प्रतीत हुई, परन्तु रानियों को दुःख-सुख समान ही थे (राम-लक्ष्मण वन में रहें या भरत-शत्रुघ्न, दो पुत्रों का वियोग तो रहेगा ही), यह समझकर वे सब रोने लगीं॥3॥

*** कहहिं भरतु मुनि कहा सो कीन्हे। फलु जग जीवन्ह अभिमत दीन्हे॥ कानन करउँ जनम भरि बासू। एहि तें अधिक न मोर सुपासू॥4॥

भावार्थ:

भरतजी कहने लगे- मुनि ने जो कहा, वह करने से जगतभर के जीवों को उनकी इच्छित वस्तु देने का फल होगा। (चौदह वर्ष की कोई अवधि नहीं) मैं जन्मभर वन में वास करूँगा। मेरे लिए इससे बढ़कर और कोई सुख नहीं है॥4॥

दोहा :

*** अंतरजामी रामु सिय तुम्ह सरबग्य सुजान। जौं फुर कहहु त नाथ निज कीजिअ बचनु

प्रवान॥256॥

भावार्थ:

श्री रामचन्द्रजी और सीताजी हृदय की जानने वाले हैं और आप सर्वज्ञ तथा सुजान हैं। यदि आप यह सत्य कह रहे हैं तो हे नाथ! अपने वचनों को प्रमाण कीजिए (उनके अनुसार व्यवस्था कीजिए)॥256॥

चौपाई :

*** भरत बचन सुनि देखि सनेहू। सभा सहित मुनि भए बिदेहू॥ भरत महा महिमा जलरासी। मुनि मति ठाढ़ि तीर अबला सी॥1॥

भावार्थ:

भरतजी के वचन सुनकर और उनका प्रेम देखकर सारी सभा सहित मुनि वशिष्ठजी विदेह हो गए (किसी को अपने देह की सुधि न रही)। भरतजी की महान महिमा समुद्र है, मुनि की बुद्धि उसके तट पर अबला स्त्री के समान खड़ी है॥1॥

*** गा चह पार जतनु हियँ हेरा। पावति नाव न बोहितु बेरा॥ औरु करिहि को भरत बड़ाई। सरसी सीपि कि सिंधु समाई॥2॥

भावार्थ:

वह (उस समुद्र के) पार जाना चाहती है, इसके लिए उसने हृदय में उपाय भी ढूँढे! पर (उसे पार करने का साधन) नाव, जहाज या बेड़ा कुछ भी नहीं पाती। भरतजी की बड़ाई और कौन करेगा? तलैया की सीपी में भी कहीं समुद्र समा सकता है?॥2॥

*** भरतु मुनिहि मन भीतर भाए। सहित समाज राम पहिं आए॥ प्रभु प्रनामु करि दीन्ह सुआसनु। बैठे सब सुनि मुनि अनुसासनु॥3॥

भावार्थ:

मुनि वशिष्ठजी की अन्तरात्मा को भरतजी बहुत अच्छे लगे और वे समाज सहित श्रीरामजी के पास आए। प्रभु श्री रामचन्द्रजी ने प्रणाम कर उत्तम आसन दिया। सब लोग मुनि की आज्ञा सुनकर बैठ गए॥3॥

*** बोले मुनिबरु बचन बिचारी। देस काल अवसर अनुहारी॥ सुनहु राम सरबग्य सुजाना। धरम नीति गुन ग्यान निधाना॥4॥

भावार्थ:

श्रेष्ठ मुनि देश, काल और अवसर के अनुसार विचार करके वचन बोले- हे सर्वज्ञ! हे सुजान! हे धर्म, नीति, गुण और ज्ञान के भण्डार राम! सुनिए-॥4॥

दोहा :

*** सब के उर अंतर बसहु जानहु भाउ कुभाउ। पुरजन जननी भरत हित होइ सो कहिअ उपाउ॥257॥

भावार्थ:

आप सबके हृदय के भीतर बसते हैं और सबके भले-बुरे भाव को जानते हैं, जिसमें पुरवासियों का, माताओं का और भरत का हित हो, वही उपाय बतलाइए॥257॥

चौपाई :

*** आरत कहहिं बिचारि न काऊ। सूझ जुआरिहि आपन दाऊ॥ सुनि मुनि बचन कहत रघुराऊ॥ नाथ तुम्हारेहि हाथ उपाऊ॥1॥

भावार्थ:

आर्त (दुःखी) लोग कभी विचारकर नहीं कहते। जुआरी को अपना ही दाँव सूझता है। मुनिके वचन सुनकर श्री रघुनाथजी कहने लगे- हे नाथ! उपाय तो आप ही के हाथ है॥1॥

*** सब कर हित रुख राउरि राखें। आयसु किए मुदित फुर भाषें॥ प्रथम जो आयसु मो कहुँ होई। माथें मानि करौं सिख सोई॥2॥

भावार्थ:

आपका रुख रखने में और आपकी आज्ञा को सत्य कहकर प्रसन्नता पूर्वक पालन करने में ही सबका हित है। पहले तो मुझे जो आज्ञा हो, मैं उसी शिक्षा को माथे पर चढ़ाकर करूँ॥2॥

*** पुनि जेहि कहँ जस कहब गोसाईं। सो सब भाँति घटिहि सेवकाईं॥ कह मुनि राम सत्य तुम्ह भाषा। भरत सनेहँ बिचारु न राखा॥3॥

भावार्थ:

फिर हे गोसाईं! आप जिसको जैसा कहेंगे वह सब तरह से सेवा में लग जाएगा (आज्ञा पालन करेगा)। मुनि वशिष्ठजी कहने लगे- हे राम! तुमने सच कहा। पर भरत के प्रेम ने विचार को नहीं रहने दिया॥3॥

*** तेहि तें कहउँ बहोरि बहोरी। भरत भगति बस भइ मति मोरी॥ मोरें जान भरत रुचि राखी। जो कीजिअ सो सुभ सिव साखी॥4॥

भावार्थ:

इसीलिए मैं बार-बार कहता हूँ, मेरी बुद्धि भरत की भक्ति के वश हो गई है। मेरी समझ में तो भरत की रुचि रखकर जो कुछ किया जाएगा, शिवजी साक्षी हैं, वह सब शुभ ही होगा॥4॥

दोहा :

*** भरत बिनय सादर सुनिअ करिअ बिचारु बहोरि। करब साधुमत लोकमत नृपनय निगम निचोरि॥258॥

भावार्थ:

पहले भरत की विनती आदरपूर्वक सुन लीजिए, फिर उस पर विचार कीजिए। तब साधुमत, लोकमत, राजनीति और वेदों का निचोड़ (सार) निकालकर वैसा ही (उसी के अनुसार) कीजिए॥258॥